चुनाव सर्वेक्षण को रोकें नहीं, सुधारें

विधान सभा या लोक सभा के चुनावों के पहले मतदाताओं की राय जानने के संबंध में प्रारंभ हुई बहस बिना किसी परिणाम पर पहुंचे समाप्त हो गई। चुनाव आयोग, विधि वेत्ता, राजनीतिक दल और कुछ विज्ञजनों की राय अपनी-अपनी रही। मीडिया ने भी अपना मत तो व्यक्त किया पर वैसे ही जैसे वह इसी तरह की अन्य मांगों, समस्याओं अथवा बहसों पर अपनी प्रतिक्रिया में व्यक्त करता है। चुनाव आयोग ने निष्पक्ष और बाहरी प्रभाव से मुक्त चुनाव के लिए अपनी राय व्यक्त की। चुनाव आयोग का डर समझ में आता है। राजनीतिक दलों का पक्ष लेना या विरोध करना भी एक तरह से समझा जा सकता है। इस बार जो डरा हुआ है वह विरोध कर रहा है। पहले वह विरोध कर रहा था जिसे अपनी सफलता पर संदेह था। विधि वेत्ता की अपनी समझ है। पर मीडिया को इस विषय पर जिस तरह से अपना पक्ष प्रस्तुत करना था, वह समझ नहीं आया। राजदीप सरदेसाई सहित कई पत्रकारों ने अपने विचार व्यक्त किये। कुछ सम्पादकीय टिप्पणियां भी की गई। मीडिया ने या तो उस पर लगाये जाने वाले आक्षेपों को पूर्णत: या आंशिक रूप से स्वीकार किया है या फिर वह इसके औचित्य तथा उपयोगिता को पूरी तरह से समझते हुए भी अपना पक्ष पूरी समर्थता के साथ प्रस्तुत नहीं कर पाया। ऐसा न करते हुए उसने उस अनुसंधानिक विकल्प पर लग रहे आक्षेप और संदेह को ही पुष्ट किया है।

चुनाव ही नहीं, ऐसे बहुत से मामले हैं जिनमें मीडिया अपने पाठकों यानी जनता को जानकारियों तथा विचारों के माध्यम से शिक्षित करता है ताकि वे समझ सकें और अपना मत बना सकें। ऐसा करना उससे अपेक्षित है तथा ऐसा करने में ही उसका होना सार्थक है। यह सब करते हुए वह तथ्य और सत्य को अपने आधार मूल्य मानता है और उन्हीं के सहारे अपनी जानकारियां तथा विचार प्रस्तुत करता है। यह सब वह किसी पक्ष के लिए नहीं करता। उसका पक्ष सत्य, कल्याण और विकास के लिए होता है। यह सब उसके मूल्य हैं जिनके आधार पर वह अपना कार्य करता है। इसीलिए लोग उसपर अन्य निकायों या संस्थाओं की तुलना में अधिक विश्वास और भरोसा करते हैं। वे उससे ऐसा चाहते हैं। ऐसा न करना या कर पाना एक तरह से उसके होने या न होने की ही निशानी है।

उसके इन कार्यों में विविधता है। कुछ हो चुकी घटनाओं या प्रसंगों की जानकारी होती है तो बहुत सी बातें ऐसी भी होती हैं जो भविष्य में होने जा रही होती हैं। उनका वह अनुमान लगाता है। यह अनुमान लगाना भी काल्पनिक नहीं होता। यह अनुमान अनुभव, अनुसंधान तथा विमर्श का एक तरह से निष्कर्ष ही होता है। इस तरह के अनुमान अनुसंधान के अंग हैं। चिकित्सक अपने निदान में इसी की सहायता लेता है। अर्थशास्त्री ऐसे ही अनुमान करते हुए

भविष्य के व्यवसाय तथा आर्थिकी को समझता और समझाता है। समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीति आदि सभी सामाजिक विषयों में ऐसे अनुमान ही समाज को आगे ले जाने और लोगों की समझ बढ़ाने में मदद करते हैं। विज्ञान भी तो ऐसे ही अनुमानों के आधार पर अपने प्रयोगों को कर पाता है। गरज यह कि भविष्य की दृष्टि से अनुमान लगाना अनुसंधान का आवश्यक और अनिवार्य अंग है। उसके बिना हम न तो आकाश के व्यवहार को जान सकते और न ही मौसम या पर्यावरण के आगामी व्यवहार को जान सकते हैं।

भारत का लोकतंत्र प्राथमिक स्तर पर मताधिकार देता है और उसी के निर्णय पर आधारित है। उसमें कुछ विकसित देशों की तरह कुछ चुनिंदा लोगों को तंत्र में हिस्सेदारी का अधिकार नहीं है। वह उन सभी को अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार देता है जो 18 वर्ष से अधिक उम्र के हैं। वे गरीब हैं या अमीर, शिक्षित हैं या अशिक्षित, गांव के हैं अथवा शहरी, सभी लोक तंत्र को चलाते हैं। विधि की दृष्टि तो यह है कि उन्हें इस सबकी जानकारी होती है या होनी चाहिये। चुनाव आयोग जितना संजीदा चुनाव की प्रक्रिया के लिए है, उतना क्या वह इसके लिए भी है कि उसके मतदाता की समझ कैसी है। क्या वह जिस तरह का समाज बनाने का सपना देखता है, उस सपने को पूरा करने को समझता भी है। आप सोचें कि ऐसा कौन सा संस्थान या निकाय है जिसका इस तरह की परिपक्वता पैदा करने का कर्तव्य है। यह काम सिर्फ मीडिया करता है। चुनाव आयोग या विधिवेत्ता अथवा राजनीतिक दल जब बिना इस समझ के कोई भी प्रतिबंध की पैरवी करते हैं तब वे उस प्राथमिक भागीदार, जिसे संविधान ने प्रभुसत्ता सौंपी है, को अपने कार्य से रोकते हैं। अब इसे दार्शनिक विस्तार में अपराध भी कहा जाये तो गलत तो नहीं होगा।

मतदान पूर्व राय जानने के लिए किये जाने वाले सर्वेक्षणों पर प्रतिबंध के संबंध में दो बातें कही गईं। एक तो सर्वेक्षण अवैज्ञानिक है, और दूसरा यह कि उसमें निहित स्वार्थ प्रवेश करके उसके परिणाम को गलत कर सकता है। जब हम कीमतों या प्रति व्यक्ति आय के संबंध में सर्वेक्षण करते हैं, तब क्या सारे लोगों से पूछा जाता है। ऐसे ही अन्य मामले भी हैं। इस बात से सहमत हुआ जा सकता है कि सर्वेक्षण का नमूना जितना बड़ा होगा, उसके परिणाम उतने ही सटीक हो सकेंगे। पर इसके कारण ही सर्वेक्षण जैसी अनुसंधान की स्वीकृत विधि को अमान्य और अवैज्ञानिक बता देना अपने आप में अवैज्ञानिक सोच की निशानी है। कोई भी विधि या प्रणाली सदाकाल और सार्वभौमिक नहीं होती है। चुनावों के पूर्वानुमान के संबंध में अमरीका में 190 वर्ष पूर्व से ऐसी प्रक्रिया प्रारंभ की गई। तब वह आज की स्थिति में नहीं थी। प्राथमिक स्तर और छोटा आकार था। उसमें सुधार हुआ और अब वह बहुत

विस्तार पा चुकी है। उसके परिणाम भी कई बार गलत हुए हैं पर ज्यादातर बार वह सही अनुमान करने में सफल रही है। जार्ज गैलप ने तो एक तरह से उसे अपना नाम ही दे दिया। भारत में भी ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है कि उसके अनुमान कपोल कल्पित रहे हैं। फिर अभी हमें तो तीन-चार दशक ही हुए हैं इस तरह का प्रयोग करते हुए। इसमें भी भारत में अब एक दर्जन से अधिक सेफोलाजिस्ट ऐसे हैं जिनपर विश्वास किया जा सकता है कि वे चुनाव की भविष्यवाणियों में कल्पना के बजाय अनुसंधान का आधार लेते हैं।

अब रही बेईमानी की बात। इसे समझें। एक तो वे सर्वेक्षण हैं या अनुमान हैं जो पत्रकारों तथा पत्रकारिता के माध्यम से किये जाते हैं। दूसरे वे हैं जिन्हें व्यावसायिक संस्थान राजनीतिक दलों तथा प्रत्याशियों के लिए करते हैं। यह व्यावसायिक संस्थान ही समाचार संस्थाओं को अपने साथ इस प्रयोजन के लिए अपने साथ जोड़ते हैं जिससे उनकी वैधता स्वीकार की जा सके। सामान्यत: यह बहस या विवाद इस दूसरे निकाय पर उठता रहा है। वे सभी लोग जो ऐसे प्रतिबंधों का पक्ष लेते हैं, अपने ईमान से बतायें कि वे या उनका वर्ग कितना ईमानदार है। यदि राजनीतिक दल इस तरह के अनुसंधानों में अपनी बेईमानी का प्रवेश नहीं होने दे तो क्या वे अनुसंधान अपने आप बेईमान हो सकते हैं। पत्रकारों और पत्रकारिता के लिए किये जाने वाले अनुमानों में इस तरह की बेईमानी नहीं रही है। हां, जब से व्यावसायिकता ने पत्रकारिता का मुखौटा लगाया है तबसे यह आक्षेप लगे हैं और बढ़े भी हैं। पत्रकारिता के लिए की जाने वाली इस वैज्ञानिक प्रक्रिया को हम क्यों उसकी अपनी अपूर्ण और अधूरी स्थिति से पूर्णावस्था की ओर चलने से रोकना चाहते हैं। इससे क्या हम पत्रकारिता को अनुसंधान की वृत्ति से ही हटाने के पक्षधर नहीं होते हैं। यदि ऐसा होता है तो यह पत्रकारिता के उपयोगकर्ताओं यानी पाठकों के साथ अन्याय होगा। यह उनके संवैधानिक अधिकार को कम किया जाना ही होगा। मोटे तौर पर पत्रकारिता में आ रही इस बुराई को यदि प्रशासन और राजनीति रोकना चाहे तो क्या नहीं रोका जा सकता है? इसे रोकने की बजाय इसमें सुधार और सम्पूर्णता का प्रयत्न करना अधिक आवश्यक है। इसे सोचें और पत्रकारिता के लोगों इस संबंध में अपनी प्रतिक्रिया नहीं, अपनी राय व्यक्त करें। यह आवश्यक होगा।

000